पंजाब राज्य और एक अन्य

बनाम

खान चन्द

(State of Punjab and Another

Vs.

Khan Chand)

पंजाब राज्य

बनाम

राम चन्द्र जगदीश चन्द्र

(State of Punjab

Vs.

M/s. Ram Chander Jagdish Chander)

(17 दिसम्बर, 1973)

(मुख्य न्यायाधिपति ए० एन० रे, न्या० एच० आर० खन्ना, के० के० मैथ्यू, ए० अलगिरिस्वामी और पी० एन० भगवती)

ईस्ट पंजाब मूवेबल प्रापर्टी (रिक्वीजीशनिंग) ऐक्ट, 1947, (1947 का 15) धारा 2, 3 और 4 की विधिमान्यता को चुनौती—विवेकाधिकार के प्रयोग में सम्बन्धित प्राधिकारी के मार्गदर्शन के लिए प्रस्तुत अधिनियम के उपबन्धों में किसी सिद्धांत या नीति का अधिनियमित न किया जाना —इस अधिनियम के उपबन्ध दूषित हैं और अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते हैं।

संविधान, अनुच्छेद 31(5)—संविधानपूर्व विधियों को संरक्षण तभी प्राप्त होता है जब अनुच्छेद 31(2) का उल्लंघन होता है, न कि तब जब अनुच्छेद 14 का उल्लघंन होता है।

प्रत्यर्थी टाटा मर्कडाईज़ बेंज ट्रक संख्या 1607 का स्वामी है। तारीख 18 दिसम्बर, 1964 को जिला मजिस्ट्रेट, रोहतक ने अधिनियम की धारा 2 के अधीन एक आदेश पारित किया जिसमें प्रत्यर्थी खान चन्द से यह अपेक्षा की गई कि वह उपरोक्त ट्रक को कार्यपालक इंजीनियर, रोहतक के नियंत्रण में दे दे क्योंकि

जिला मजिस्ट्रेट का मत है कि बाढ़ के काम के लिए सड़क सामग्री ले जाने के लिए ट्रकों की आवश्यकता है। यह भी उल्लेख किया गया कि ट्रकों के उपयोग के लिए प्रतिकर सरकार द्वारा नियत दर पर दिया जाएगा। तत्पश्चात् जिला मजिस्ट्रेट ने 19 दिसम्बर, 1964 को ट्रक को अपने कब्जे में ले लिया। इस पर प्रत्यर्थी ने जिला मजिस्ट्रेट के उपरोक्त आदेश की विधिमान्यता को चुनौती देते हुए संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय में पिटीशन फाइल किया। यह भी प्रार्थना की गई कि अधिनियम के उपबन्धों को असांविधानिक घोषित किया जाए।

पिटीशन का पंजाब राज्य और रोहतक जिला मजिस्ट्रेट ने प्रतिवाद किया जो हमारे समक्ष अपीलार्थी हैं और पिटीशन के विरोध में जिला मजिस्ट्रेट ने शपथपत्र फाइल किया। पहले, पिटीशन एक एकल न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के लिए रखा गया जिसने इसे एक खण्ड न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया। खण्ड न्यायपीठ ने विषय के महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए इसे पूर्ण न्यायपीठ को निर्दिष्ट कर दिया। पूर्ण न्यायपीठ ने अधिनियम के विभिन्न उपबन्धों की परीक्षा की और यह निष्कर्ष निकाला कि अधिनियम की धारा 2 संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करती है क्योंकि यह कार्यपालिका को नागरिकों के सम्पत्ति के अधिकारों में मनमानी रीति से हस्तक्षेप करने की अनियंत्रित और असीमित शक्ति प्रदान करती है। यह मत व्यक्त किया गया कि अधिनियम कार्यपालिक प्राधिकारियों पर इसके द्वारा प्रदत्त विस्तृत विवेकाधिकार के प्रयोग में मार्ग-दर्शन के लिए कोई सिद्धांत या नीति अधिकथित नहीं करता है। तदनुसार जैसा कि पहले मत व्यक्त किया जा चुका है अधिनियम की धारा 2 संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करने वाली अभिनिर्धारित की गई। जहां तक अधिनियम की धारा 3 का सम्बन्ध है यह मत व्यक्त किया गया कि यह धारा 2 का पहले पूर्व आश्रय लिए बिना प्रवृत्त नहीं हो सकती। अधिनियम के अन्य उपबन्धों को अधिनियम की धारा 2 और 3 में अन्तर्विष्ट सम्पत्ति के अधिग्रहण और अर्जन की शक्तियों के आनुषंगिक मात्र अभिनिर्धारित किया गया। चूंकि अधिनियम को वस्तुओं और व्यक्तियों के बीच विभेद करने की मनमानी और अनियंत्रित शक्ति सरकार पर प्रदत्त करने वाला पाया गया और चूंकि विभेद अधिनियम में प्रत्यक्षतया था इसलिए समस्त अधिनियम असांविधानिक और शून्य अभिनिर्धारित किया गया।

पंजाब उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध प्रमाण-पत्र लेकर फाइल की गई अपील खरिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—ईस्ट पंजाब मूवेबल प्रापर्टी (रिक्वीजीशन) ऐक्ट, 1947 की धारा 2, 3 और 4 के उपबन्धों के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि

अधिनियम राज्य सरकार या उसके द्वारा प्राधिकृत अधिकारियों पर किसी जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण करने की अनियंत्रित शक्ति प्रदत्त करता है। अधिनियम की परिधि से केवल वह सम्पत्ति अलग की गई है जो धार्मिक पूजा या विमान या विमान का भाग बनाने वाले अथवा विमान के प्रचालन, मरम्मत या अनुरक्षण से सम्बन्धित किसी चीज के प्रयोजन के लिए प्रयुक्त की जाती है। अधिनियम में उस उद्देश्य या प्रयोजन के बारे में कोई मार्ग-दर्शन अधिकथित नहीं किया गया है जिसके लिए राज्य सरकार या उसके द्वारा प्राधिकृत अधिकारी किसी जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण करना आवश्यक या समीचीन समझे। अधिनियम में यह भी अपेक्षा नहीं की गई है कि जंगम सम्पत्ति के अधिग्रहण करने वाले प्राधिकारी को आदेश में वह प्रयोजन विनिर्दिष्ट करना चाहिए जिसके लिए उस सम्पत्ति को अधिग्रहण करना आवश्यक या समीचीन हो गया है। अधिनियम में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है कि जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण करने की शक्ति अधिनियम के अधीन केवल लोक प्रयोजन के लिए प्रयुक्त की जा सकती है और न ही उसमें कोई ऐसा उपबन्ध है कि अधिनियम के अधीन शक्तियों का प्रयोग केवल आपातकाल में या किसी विशेष आवश्यकता में किया जा सकता है। अधिनियम के अधीन प्राधिकृत कोई अधिकारी अधिनियम के उपबन्धों के अधीन किसी भी प्रयोजन के लिए जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण कर सकता है। जिला मजिस्ट्रेट के लिए जो कि अधिनियम के अधीन प्राधिकृत अधिकारी है, अधिनियम के उपबन्धों के अधीन यह अनुज्ञेय होगा कि वह जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय में उपयोग के लिए जिले के अन्तर्गत किसी भी फर्नीचर का अधिग्रहण कर ले। इसी प्रकार जिला मजिस्ट्रेट के लिए यह अनुज्ञेय होगा कि वह किसी भी प्राइवेट कार का अधिग्रहण कर ले जो उसे अपने उपयोग के लिए बढ़िया लगे। इस बारे में विचार करना आवश्यक नहीं है कि क्या जिला मजिस्ट्रेट अधिनियम के अधीन अपनी शक्तियों का ऐसे प्रयोजन के लिए कभी प्रयोग करेगा। यह कहना पर्याप्त होगा कि अधिनियम के उपबन्ध में ऐसी कोई बात नहीं है जो जिला मजिस्ट्रेट के लिए किसी भी प्रयोजन के लिए जिसके लिए वह ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझे, जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण करना अनुज्ञेय बनाती हो। (पैरा 5)

अधिनियम के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग केवल राज्य सरकार द्वारा ही नहीं किया जा सकता बल्कि अधिकारियों द्वारा भी किया जा सकता है जिन्हें राज्य सरकार द्वारा वह प्रत्यायोजित की जाए। अधिनियम में ऐसी कोई बात नहीं है कि वह अधिकारी जिसे अधिनियम के अधीन शक्तियां प्रत्यायोजित की जा सकें एक विशिष्ट रैंक से नीचे का नहीं होगा। परिणाम यह है कि किसी जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण करने की शक्तियां जो बहुत अधिक व्यापक प्रकार की हैं, एक

छोटे अधिकारी को भी प्रदत्त की जा सकती हैं। जंगम सम्पत्ति के स्वामी को संदेय प्रतिकर अवधारित करने के लिए अधिनियम में कोई उपयुक्त मशीनरी भी उपबन्धित नहीं है और न ही अधिनियम में प्रतिकर की रकम अवधारित करने के लिए कोई सिद्धांत अन्तर्विष्ट है। अधिनियम की धारा 4 के अनुसार संदत्त किए जाने वाला प्रतिकर इतना होगा जितना राज्य सरकार अवधारित करे। (पैरा 6)

अधिनियम की अत्यंत उग्र और अप्रायिक विशिष्टियों से, जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि अधिनियम के अधीन प्राधिकारियों को जंगम सम्पत्ति के अधिग्रहण करने के लिए मनमानी शक्तियां प्रदत्त की गई हैं और अधिग्रहण की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए कोई भी मार्गदर्शन विहित नहीं है। हमारे विचार में, जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण करने की शक्ति के प्रयोग के लिए मार्गदर्शन का पूर्णत: अभाव अधिनियम की धारा 2 को दूषित करता है। मनमानापन और विभेद करने की शक्ति अधिनियम के उक्त उपबन्ध पर प्रत्यक्ष दर्शित होती है। (पैरा 7)

शक्तियों के प्रयोग में जो विवेकाधिकार पूर्णत: अनियंत्रित और मार्गदर्शन रहित होगा वह सुगमता से मनमानेपन में ढल सकता है। जब उनकी मनमर्जी के अनुसार पृथक्-पृथक् कार्य किया जाएगा तो पृथक्-पृथक् व्यक्तियों की इच्छा के अनुसार उनकी छांट का दायित्व अवश्यमेव आ जाएगा। यदि कोई विधान-मण्डल किसी अधिनियमिति के अधीन कार्य करने वाले प्राधिकारियों पर ऐसा असीम विवेकाधिकार प्रदान करता है तो वह अपने अनिवार्य कृत्य को छोड़ देता है क्योंकि ऐसे विवेकाधिकार से विभेद होना आवश्यक है जो कि संविधान के अनुच्छेद 14 में समाविष्ट विधि के समक्ष समता के आदर्श के प्रतिकूल होगा। विवेकाधिकार के प्रयोग में सम्बन्धित प्राधिकारी के मार्गदर्शन के लिए कोई सिद्धांत या नीति का न होना अधिनियमिति को दूषित कर देता है और उसे अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण के आधार पर आक्षेप के लिए उपयुक्त बना देता है। (पैरा 8)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1970]	(1970) 11 गुजरात लॉ रिपोर्टर 403 : **जयन्तीलाल पुरुषोत्तमदास बनाम गुजरात राज्य** (Jayantilal Parshottamdas *Vs.* State of Gujarat);	11

[1962] (1962) 2 एस० सी० आर० 169 :
पी० जे० इरानी बनाम मद्रास राज्य (P. J. Irani *Vs.* The State of Madras); 15

[1961] (1961) 3 एस० सी० आर० 77 :
के० टी० मूपिल नायर बनाम केरल राज्य (K. T. Moopil Nair *Vs.* State of Kerala); 32

[1959] (1959) सप्लीमेण्ट. 1 एस० सी० आर० 489 :
राम नारायण मेधी बनाम मुम्बई राज्य (Ram Narain Medhi *Vs.* The State of Bombay); 14

[1959] (1959) एस० सी० आर० 279 :
श्री राम कृष्ण डालमियां बनाम श्री जस्टिस एस० आर० तेन्दोलकर और अन्य (Shri Ram Krishna Dalmia *Vs.* Shri Justice S. R. Tendolkar and Others); 9

[1958] (1958) एस० सी० आर० 308 :
वीरेन्द्र बनाम पंजाब राज्य (Virendra *Vs.* State of Punjab); 25

[1957] (1957) एस० सी० आर० 233 :
पन्नालाल बिन्जराज बनाम भारत संघ (Pannalal Binjraj *Vs.* Union of India); 10 और 34

[1956] (1956) एस० सी० आर० 267 :
बीड़ी सप्लाई कम्पनी बनाम भारत संघ और अन्य (Bidi Supply Co. *Vs.* The Union of India and Others); 33

[1955] (1955) 1 एस० सी० आर० 380 :
हरिशंकर बागला और एक अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (Harishankar Bagla and Another *Vs.* The State of Madhya Pradesh); 13

[1952] (1952) एस० सी० आर० 737 :
गुरबचन सिंह बनाम मुम्बई राज्य (Gurbachan Singh *Vs.* State of Bombay); और 24

[1951] (1951) एस० सी० आर० 682 :
मुम्बई राज्य बनाम एफ० एन० बलसारा
(State of Bombay *Vs.* F. N. Balsara). 30 और 32

सिविल अपीली अधिकारिता : 1967 की सिविल अपील संख्या 1730.

1965 के सिविल रिट संख्या 26 में पंजाब उच्च न्यायालय के तारीख 14 मार्च, 1966 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई अपील।

1967 की सिविल अपील संख्या 1751-1753.

1965 की सिविल रिट संख्या 627 से 629 में पंजाब उच्च न्यायालय के तारीख 24 मार्च, 1966 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री वी० सी० महाजन और आर० एन० सचदे

प्रत्यर्थियों की ओर से शौकत हुसैन

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति एच० आर० खन्ना ने दिया।

न्यायाधिपति खन्ना—

इस निर्णय से 1967 की संख्या 1730 और 1751, 1752 और 1753 वाली सिविल अपीलों का भी निपटारा हो जाएगा जो पंजाब राज्य द्वारा पंजाब उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध प्रमाण-पत्र ले कर फाइल की गई हैं जिसके द्वारा ईस्ट पंजाब मूवेबल प्रापर्टी (रिक्वीज़ीशन) ऐक्ट, 1947 (1947 का ईस्ट पंजाब ऐक्ट संख्या 15) (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 2 संविधान के अनुच्छेद 14 की अतिक्रमणकारी होने के आधार पर अवैध घोषित की गई थी। इससे आगे यह अभिनिर्धारित किया गया था कि धारा 2 शेष अधिनियम से पृथककरणीय नहीं है और अधिनियम के अन्य उपबंध अधिनियम की धारा 2 और 3 में अन्तर्विष्ट सम्पत्ति के अधिग्रहण और अर्जन की शक्तियों के अनुषंगी मात्र हैं। तदनुसार, उच्च न्यायालय ने सम्पूर्ण अधिनियम को असांविधानिक और शून्य अभिनिर्धारित कर दिया।

2. हम उन तथ्यों को उपवर्णित करते हैं जिनसे सिविल अपील संख्या 1730 उद्भूतपूर्व क्योंकि पक्षकारों का यह सामान्य पक्ष-कथन है कि इस

अपील का विनिश्चय अन्य अपीलों को भी लागू होगा। सिविल अपील संख्या 1730 में प्रत्यर्थी टाटा मर्केन्डाईज़ बेंज ट्रक संख्या 1607 का स्वामी है। तारीख 18 दिसम्बर, 1964 को जिला मजिस्ट्रेट, रोहतक ने अधिनियम की धारा 2 के अधीन एक आदेश पारित किया जिसमें प्रत्यर्थी खान चन्द से यह अपेक्षा की गई कि वह उपरोक्त ट्रक को कार्यपालिक इंजीनियर, रोहतक के नियंत्रण में दे दे क्योंकि जिला मजिस्ट्रेट का मत है कि बाढ़ के काम के लिए सड़क सामग्री ले जाने के लिए ट्रकों की आवश्यकता है। यह भी उल्लेख किया गया कि ट्रकों के उपयोग के लिए प्रतिकर सरकार द्वारा नियत दर पर दिया जाएगा। तत्पश्चात् जिला मजिस्ट्रेट ने 19 दिसम्बर, 1964 को ट्रक को अपने कब्जे में ले लिया। इस पर प्रत्यर्थी ने जिला मजिस्ट्रेट के उपरोक्त आदेश की विधिमान्यता को चुनौती देते हुए संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय में पिटीशन फाइल किया। यह भी प्रार्थना की गई कि अधिनियम के उपबंधों को असाविधानिक घोषित किया जाए।

3. पिटीशन का पंजाब राज्य और रोहतक जिला मजिस्ट्रेट ने प्रतिवाद किया जो हमारे समक्ष अपीलार्थी हैं और पिटीशन के विरोध में जिला मजिस्ट्रेट ने शपथ-पत्र फाइल किया। पहले, पिटीशन एकल न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के लिए रखा गया जिसने इसे एक खण्ड न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया। खण्ड न्यायपीठ ने विषय के महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए इसे पूर्ण न्यायपीठ को निर्दिष्ट कर दिया। पूर्ण न्यायपीठ ने अधिनियम के विभिन्न उपबंधों की परीक्षा की और यह निष्कर्ष निकाला कि अधिनियम की धारा 2 संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करती है क्योंकि यह कार्यपालिका को नागरिकों के सम्पत्ति के अधिकारों में मनमानी रीति से हस्तक्षेप करने की अनियन्त्रित और असीमित शक्ति प्रदान करती है। यह मत व्यक्त किया गया कि अधिनियम कार्यपालिक प्राधिकारियों पर इसके द्वारा प्रदत्त विस्तृत विवेकाधिकार के प्रयोग में मार्ग-दर्शन के लिए कोई सिद्धान्त या नीति अधिकथित नहीं करता है। तदनुसार जैसा कि पहले मत व्यक्त किया जा चुका है अधिनियम की धारा 2 संविधान के अनुच्छेद 14 की अतिक्रमणकारी अभिनिर्धारित की गई। जहां तक अधिनियम की धारा 3 का सम्बन्ध है यह मत व्यक्त किया गया कि यह धारा 2 का पहले पूर्व आश्रय लिए बिना प्रवृत्त नहीं हो सकती। अधिनियम के अन्य उपबन्धों को अधिनियम की धारा 2 और 3 में अन्तर्विष्ट सम्पत्ति के अधिग्रहण और अर्जन की शक्तियों के आनुषंगिक मात्र अभिनिर्धारित किया गया। चूंकि अधिनियम को वस्तुओं और व्यक्तियों के बीचविभेद करने की मनमानी और अनियन्त्रित शक्ति सरकार पर प्रदत्त

करने वाला पाया गया और चूंकि विभेद अधिनियम में प्रत्यक्ष था इसलिए समस्त अधिनियम को असांविधानिक और शून्य अभिनिर्धारित किया गया।

4. यह कहा जा सकता है कि इस अधिनियम द्वारा 1947 का अध्यादेश 5 प्रतिस्थापित किया गया था जो पूर्व पंजाब के राज्यपाल द्वारा 15 सितम्बर, 1947 को प्रख्यापित किया गया था। अधिनियम पहले 13 दिसम्बर, 1947 को पूर्वी पंजाब सरकार के राजपत्र में प्रकाशित किया गया था। उद्देशिका के अनुसार यह अधिनियम जंगम सम्पत्ति के अधिग्रहण और अर्जन के लिए उपबन्ध करने के लिऐ था। अधिनियम की धारा 2, 3 और 4 निम्न प्रकार है—

*"2 (1) यदि राज्य सरकार ऐसा करना आवश्यक और समीचीन समझती है तो वह लिखित आदेश द्वारा किसी जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण कर सकती है और साथ ही ऐसे आदेश कर सकती है जो वह अधिग्रहण के सम्बन्ध में आवश्यक या समीचीन समझे :

परन्तु धार्मिक पूजा के प्रयोजन के लिए प्रयुक्त कोई सम्पत्ति या कोई विमान अथवा विमान का भाग बनाने वाली कोई चीज' या विमान के प्रचालन, मरम्मत या अनुरक्षण से सम्बन्धित कोई चीज़ अधिगृहीत नहीं की जाएगी।

(2) जहां राज्य सरकार उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश करती है वहां वह उस सम्पत्ति का उपयोग या व्यवहार ऐसी रीति से कर सकेगी, जैसा उसे समीचीन प्रतीत हो।

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है —

"2. (1) The State Government, if it considers it necessary or expedient so to do, may by order in writing requisition any moveable property and may make such further orders as may be necessary or expedient in connection with the requisitioning :

Provided that no property used for the purpose of religious worship and no aircraft or anything forming part of an aircraft or connected with the operation, repair or maintenance of aircraft, shall be requisitioned.

(2) Where the State Government makes any order under sub-section (1), it may use or deal with the property in such manner as may appear to it to be expedient.

3. (1) राज्य सरकार किसी भी समय धारा 2 के अधीन अपने द्वारा अधिगृहीत किसी भी जंगम सम्पत्ति को उसके स्वामी पर सूचना तामील करके या जहां स्वामी आसानी से उपलभ्य न हो या स्वामित्व विवादग्रस्त हो, वहां राजपत्र में यह कथित करते हुए सूचना प्रकाशित करके कि उक्त प्राधिकारी ने इस धारा के अनुसरण में इसे अर्जित करने का विनिश्चय किया है, अर्जित कर सकेगी।

(2) जहां उपधारा (1) के अधीन अर्जन की कोई सूचना सम्पत्ति के स्वामी पर तामील की जाती है या राजपत्र में प्रकाशित की जाती है, वहां उस दिन के आरम्भ से जिसको सूचना इस प्रकार तामील या प्रकाशित की जाए, वह सम्पत्ति सब भारों से मुक्त होकर राज्य सरकार में निहित हो जाएगी और उसके अधिग्रहण की अवधि समाप्त हो जाएगी।

(4) इस अधिनियम के अधीन अधिगृहीत या अर्जित किसी जंगम सम्पत्ति के स्वामी को ऐसा प्रतिकर संदत्त किया जाएगा जैसा राज्य सरकार अवधारित करे।"

---

3. (1) The State Government may at any time acquire any moveable property requisitioned by it under section 2 by serving on the owner thereof, or, where the is not readily traceable or the ownership is in dispute, by publishing in the Official Gazette, a notice stating that the said authority has decided to acquire it in pursuance of this section

(2) Where a notice of acquisition is served on the owner of the property or published in the Official Gazette under sub-section (1) then at the beginning of the day on which the notice is so served or published the property shall vest in the State Government free from all encumbrances and the period of requisition thereof shall end.

4. The owner of any moveable property requisitioned or acquired under this Act shall be paid such compensation as the State Government may determine."

1973(12) eILR(PAT) SC 201

अधिनियम की धारा 5 अधिगृहीत सम्पत्ति के अधिग्रहण से निर्मुक्ति का उल्लेख करती है और धारा 6 राज्य सरकार को किसी सम्पत्ति के अधिग्रहण या अर्जन की दृष्टि से निदेश देने के लिए और जानकारी प्राप्त करने के लिए अथवा अधिनियम के अधीन संदेय प्रतिकर की रकम अवधारित करने के प्रयोजन के लिए सशक्त करती है। धारा 7 राज्य सरकार को ऐसे कदम उठाने या उठवाने के लिए या ऐसा बल प्रयोग करने या कराने के लिए अधिनियम के अधीन किए गए किसी आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए युक्तियुक्त रूप से समर्थ बनाती है। धारा 8 के अनुसार राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचित आदेश द्वारा यह निदेश दे सकेगी कि अधिनियम द्वारा उस पर प्रदत्त किसी शक्ति या अधिरोपित किसी कार्य का ऐसी परिस्थितियों में और ऐसी शर्तों के अधीन जो निदेश में विनिर्दिष्ट की जाएं, ऐसे अधिकारी द्वारा जिसे विनिर्दिष्ट किया जाए, प्रयोग या निर्वहन किया जाएगा। धारा 9 अधिनियम के अधीन अपराधों और शास्तियों को विहित करती है जब कि धारा 10 अधिनियम के अधीन कार्य करने वाले व्यक्तियों को सिविल या दाण्डिक कार्यवाहियों के अनुसार संरक्षण प्रदान करती है। धारा 11 द्वारा 1947 का अध्यादेश संख्या 5 निरस्त किया गया है।

5. अपीलार्थियों की ओर से श्री महाजन ने उच्च न्यायालय के निर्णय की निन्दा की है और इस बात पर जोर दिया है कि अधिनियम की धारा 2 के उपबन्ध संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं करते हैं। हमारे विचार में यह दलील सुआधारित नहीं है। अधिनियम के सुसंगत उपबन्ध ऊपर उद्धृत किए जा चुके हैं और उनका परिशीलन करने पर हमारा निष्कर्ष है कि अधिनियम राज्य सरकार या उसके द्वारा प्राधिकृत अधिकारियों पर किसी जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण करने की अनियंत्रित शक्ति प्रदत्त करता है। अधिनियम को व्यप्ति-क्षेत्र से केवल वह सम्पत्ति अलग की गई है जो धार्मिक पूजा या विमान या विमान का भाग बनाने वाले अथवा विमान के प्रचालन, मरम्मत या अनुरक्षण से सम्बन्धित किसी चीज़ के प्रयोजन के लिए प्रयुक्त की जाती है। अधिनियम में उस उद्देश्य या प्रयोजन के बारे में कोई मार्ग-दर्शन अधिकथित नहीं किया गया है जिसके लिए राज्य सरकार या उसके द्वारा प्राधिकृत अधिकारी किसी जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण करना आवश्यक या समीचीन समझे। अधिनियम में यह भी अपेक्षा नहीं की गई है कि जंगम सम्पत्ति के अधिग्रहण करने वाले प्राधिकारी को आदेश में वह प्रयोजन विनिर्दिष्ट करना चाहिए जिसके लिए उस सम्पत्ति का अधिग्रहण करना आवश्यक या समीचीन हो गया है। अधिनियम में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है कि जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण करने की शक्ति अधिनियम के अधीन केवल लोक प्रयोजन के लिए प्रयुक्त की जा सकती है और

न ही उसमें कोई ऐसा उपबन्ध है कि अधिनियम के अधीन शक्तियों का प्रयोग केवल आपातकाल में या किसी विशेष आवश्यकता में किया जा सकता है। अधिनियम के अधीन प्राधिकृत कोई अधिकारी अधिनियम के उपबन्धों के अधीन किसी भी प्रयोजन के लिए जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण कर सकता है। उदाहरण के लिए, जिला मजिस्ट्रेट के लिए जो कि अधिनियम के अधीन प्राधिकृत अधिकारी है, अधिनियम के उपबन्धों के अधीन यह अनुज्ञेय होगा कि वह जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय में उपयोग के लिए जिले के अन्तर्गत किसी भी फर्नीचर का अधिग्रहण कर ले। इसी प्रकार जिला मजिस्ट्रेट के लिए यह अनुज्ञेय होगा कि वह किसी भी प्राइवेट कार का अधिग्रहण कर ले जो उसे अपने उपयोग के लिए बढ़िया लगे। इस बारे में विचार करना आवश्यक नहीं है कि क्या जिला मजिस्ट्रेट अधिनियम के अधीन अपनी शक्तियों का ऐसे प्रयोजन के लिए कभी प्रयोग करेगा। यह कहना पर्याप्त होगा कि अधिनियम के उपबन्ध में ऐसी कोई बात नहीं है जो जिला मजिस्ट्रेट के लिए किसी भी प्रयोजन के लिए जिसके लिए वह ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझे, जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण करना अननुज्ञेय बनाती हो।

6. अधिनियम के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग केवल राज्य सरकार द्वारा ही नहीं किया जा सकता बल्कि अधिकारियों द्वारा भी किया जा सकता है जिन्हें राज्य सरकार द्वारा वह प्रत्यायोजित की जाए। अधिनियम में ऐसी कोई बात नहीं है कि वह अधिकारी जिसे अधिनियम के अधीन शक्तियां प्रत्यायोजित की जा सकें, एक विशिष्ट रैंक से नीचे का नहीं होगा। परिणाम यह है कि किसी जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण करने की शक्तियां जो बहुत अधिक व्यापक प्रकार की हैं, एक छोटे अधिकारी को भी प्रदत्त की जा सकती हैं। जंगम सम्पत्ति के स्वामी को संदेय प्रतिकर अवधारित करने के लिए अधिनियम में कोई उपयुक्त मशीनरी भी उपबन्धित नहीं है और न ही अधिनियम में प्रतिकर की रकम अवधारित करने के लिए कोई सिद्धान्त अन्तर्विष्ट हैं। अधिनियम की धारा 4 के अनुसार संदत्त किए जाने वाला प्रतिकर इतना होगा जितना राज्य सरकार अवधारित करे।

7. अधिनियम की अत्यंत उग्र और अप्रायिक विशिष्टियों से, जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि अधिनियम के अधीन प्राधिकारियों पर जंगम सम्पत्ति के अधिग्रहण करने के लिए मनमानी शक्तियां प्रदत्त करता है और अधिग्रहण की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए कोई भी मार्ग-दर्शन विहित नहीं करता है। हमारे विचार में, जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण करने की शक्ति के प्रयोग के लिए मार्ग-दर्शन का पूर्णतः अभाव

अधिनियम की धारा 2 को दूषित करता है। मनमानापन और विभेद करने की शक्ति अधिनियम के उक्त उपबन्ध पर प्रत्यक्ष दर्शित होती है और हमारे विचार में, वह उपबन्ध उस क्षेत्र के अन्तर्गत आता है जिसे निवारित करने के लिए अधिनियम का अनुच्छेद 14 बनाया गया है। यह तथ्य कि आक्षेपित अधिनियम संविधान पूर्व विधियों को अनुच्छेद 31 (5) द्वारा दिए गए संरक्षण के प्रवृत्त होने से पूर्व अधिनियमित किया गया था, अनुच्छेद 31 (2) के उल्लंघन के आधार पर दी गई चुनौती के विरुद्ध है; अनुच्छेद 31 (5) संविधान पूर्व विधियों को इस आधार पर किए गए आक्रमण से उन्मुक्ति प्रदान नहीं करता है कि वे संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करती हैं।

8. हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि अधिनियमिति के अधीन शक्ति के प्रयोग के लिए प्राधिकारियों में विवेकाधिकार निहित करने से ही अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं हो जाता है। आपत्तिजनक बात विवेकाधिकार का प्रयोग करने के बारे में कोई मार्ग-दर्शन दिए बिना मनमाना और अनियंत्रित विवेकाधिकार प्रदत्त करना है। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि एक आधुनिक राज्य को अनेक जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ता है, यह अवश्यम्भावी है कि विस्तार की बातें अधिनियमितियों के अधीन कार्य करने वाले प्राधिकारियों पर छोड़ देनीं चाहिए। अतः अधिनियमिति के अधीन उनमें विहित शक्तियों के प्रयोग के लिए सम्बन्धित प्राधिकारियों को विवेकाधिकार देना होगा। तथापि, अधिनियमिति में अधिनियमिति के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मार्ग-दर्शन विहित होना चाहिए और उस मार्ग-दर्शन के ढांचे के भीतर ही प्राधिकारी अपने को प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकते हैं। शक्तियों के प्रयोग में जो विवेकाधिकार आत्यंतिक, अनियंत्रित और मार्ग-दर्शन रहित होगा वह सुगमता से मनमानेपन में ढल सकता है। जब व्यक्ति अपनी मनमर्जी के अनुसार कार्य करते हैं तो पृथक्-पृथक् व्यक्तियों की इच्छा के अनुसार मनोनुकूल वरण का तत्त्व अवश्यमेव आ ही जाएगा। यदि कोई विधानमण्डल किसी अधिनियमिति के अधीन कार्य करने वाले प्राधिकारियों पर ऐसा असीम विवेकाधिकार प्रदान करता है तो वह अपने अनिवार्य कृत्य को छोड़ देता है क्योंकि ऐसे विवेकाधिकार से विभेद होना आवश्यक है जो कि संविधान के अनुच्छेद 14 में समाविष्ट विधि के समक्ष समता के आदर्श के प्रतिकूल होगा। विवेकाधिकार के प्रयोग में सम्बन्धित प्राधिकारी के मार्ग-दर्शन के लिए कोई सिद्धान्त या नीति का न होना अधिनियमिति को दूषित कर देता है और उसे अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण के आधार पर आक्षेप के लिए उपयुक्त बना देता है। उपर्युक्त बातों का यह कोई उत्तर नहीं है कि कार्यपालिक अधिकारियों के बारे में यह माना जाता है कि वे

युक्तियुक्त व्यक्ति हैं जो अपनी शक्ति का गलत प्रयोग नहीं करते हैं और "विवेकाधिकार' का विवेक से प्रयोग करने का विश्वास किया जा सकता है जैसा कि जॉन ई० कर्सेल कृत "पार्लियामेंटरी सुपरवीजन आफ डेलीगेटेड लेजिसलेशन", 1960 संस्करण के पृष्ठ 3 पर वर्णित है—

> "तथापि, प्रश्न यह है कि किसी में भी निर्बन्धन रहित शक्ति न्यस्त नहीं की जानी चाहिए। शक्ति अधिक्रमणकारी प्रकृति की हो सकती है और उसके अधिक्रमण प्रायः उन बातों के लिए होते हैं जो निष्ठापूर्वक अच्छे समझे जाते हैं और वस्तुतः आवश्यक उद्देश्य समझे जाते हैं। समस्त इतिहास में अत्याचार का स्पष्ट भयानक रूप यह है कि मनुष्यों पर वह चीज लादी जाती है जिसे कोई उनके लिए अच्छी होने का विश्वास करता हैं। अतः प्रत्यायोजित विधायी प्राधिकार के प्रयोग पर नियंत्रण के अधिरोपण से दुराशय की आशंका विवक्षित नहीं है। मानव प्रकृति, जिस रूप में वह है, की स्वयं उससे सुरक्षा करनी होगी और जहां शक्ति का सम्बन्ध हो, वहां अवरोध की संभावना की विधिमान्यता ही, जैसा कि हम देखेंगे, उन दुरुपयोगों के विरुद्ध रक्षोपाय है जिनमें लक्ष्यों का प्रयोग साधनों को न्यायोचित करने के लिए किया जाए और आशयगत अच्छाई का प्रभाव बुरा हो जाता है।"

9. **श्री राम कृष्ण डालमियां** बनाम **श्री जस्टिस एस० आर० तेन्दोलकर और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि कोई कानून अपने उपबन्ध को लागू करने के लिए व्यक्तियों या वस्तुओं का कोई वर्गीकरण न करे, किन्तु वह उन व्यक्तियों या वस्तुओं का चयन करने और वर्गीकरण करने का काम जिनके सम्बन्ध में उसके उपबन्ध लागू होते हैं, सरकार के विवेकाधिकार पर छोड़ सकता है। ऐसे किसी कानून की विधिमान्यता के प्रश्न का अवधारण करने में या अन्यथा न्यायालय केवल इसीलिए उस विधि को अवैध घोषित नहीं करेगा कि उसमें प्रत्यक्षतः कोई वर्गीकरण प्रतीत नहीं होता है या कि चयन या वर्गीकरण करने के लिए विवेकाधिकार सरकार को दिया गया है बल्कि वह यह परीक्षा और अभिनिश्चय करेगा कि क्या वह कानून चयन या वर्गीकरण के विषय में सरकार द्वारा विवेकाधिकार के मार्ग-दर्शन के लिए कोई सिद्धान्त या नीति अधिकथित करता है। ऐसी संवीक्षा करने के पश्चात् न्यायालय, यदि उसमें चयन या वर्गीकरण के विषय में सरकार द्वारा विवेकाधिकार के प्रयोग के मार्ग-दर्शन के लिए कोई सिद्धान्त या नीति अधिकथित नहीं है, इस

---

1 (1959) एस० सी० आर० 279, 299.

1973(12) eILR(PAT) SC 201

आधार पर कानून को अवैध घोषित करेगा कि वह कानून सरकार को मनमानी और अनियंत्रित शक्ति के प्रत्यायोजन के लिए उपबन्ध करता है जिससे कि वह एक ही स्थिति के व्यक्तियों या वस्तुओं के बीच विभेद करने में उसे समर्थ बना सके और इसीलिए स्वयं कानून में विभेद अन्तर्निहित है। ऐसी स्थिति में न्यायालय विधि और ऐसी विधि के अधीन कार्यपालिक कार्यवाही, दोनों को अवैध घोषित करेगा।

10. एक और अन्तर को ध्यान में रखा जा सकता है जिसका **पन्नालाल बिन्जराज** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने उल्लेख किया था जिसको श्री महाजन ने निर्दिष्ट किया है। उस मामले में इस न्यायालय ने इण्डियन इन्कम-टैक्स ऐक्ट, 1922 की धारा 5 (7-ए) की सांविधानिक विधिमान्यता को बहाल रखा था और यह अभिनिर्धारित किया था कि आयकर आयुक्त या केन्द्रीय राजस्व बोर्ड में आयकर मामले को उस क्षेत्र से बाहर अन्तरित करने के लिए निहित शक्ति जहां निर्धारिती निवास करता है या कारबार चलाता है, विधि के समक्ष समता की इंकारी की कोटि में नहीं आएगी। इस संदर्भ में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था—

> "जो विवेकाधिकार संविधान द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकार के बारे में प्रयोग किया जाता है, उसके और ऐसे किसी अन्य अधिकार के बीच जो किसी कानून द्वारा दिया जाता है, व्यापक अन्तर है। यदि वह कानून ऐसे अधिकार का उल्लेख करता है जिसका स्वरूप मूलभूत नहीं है तो वह कानून उसे छीन सकता है। उदाहरण के लिए, जहां कोई विवेकाधिकार व्यापार, वृत्ति या कारबार चलाने के लिए अनुज्ञप्ति जारी करने के विषय में दिया जाता है या जहां सेन्सरशिप के अधिरोपण द्वारा भाषण-स्वातन्त्रय आदि पर निर्बन्धन अधिरोपित किए जाते हैं वहां विवेकाधिकार स्पष्ट नियमों द्वारा अनियंत्रित होना चाहिए ताकि वह युक्तियुक्त निर्बन्धन के प्रवर्ग में आ सके। इस प्रकार का विवेकाधिकार मूलाअधिकार को अन्तर्वलित न करने वाले विषयों के बारे में, जैसे मामलों का अन्तरण, विवेकाधिकार से भिन्न होना चाहिए। जब कोई मामला एक स्थान से दूसरे स्थान पर अन्तरित किया जाता है तो स्थान या उस केन्द्र के परिवर्तन से असुविधा होती है किन्तु कोई पक्षकार यह नहीं कह सकता है कि ऐसे अन्तरण द्वारा मूल अधिकार का अतिलंघन हुआ है। दूसरे शब्दों में, निहित विवेकाधिकार पर दो दृष्टिकोणों से विचार करना

---
1 (1957) एस० सी० आर० 233.

होगा, यानी—(1) क्या उससे कोई वास्तविक और सारवान् विभेद होने की संभावना है और (2) क्या वह संविधान द्वारा प्रत्याभूत किसी मूल अधिकार से टकराता है। अनुच्छेद 14 का तब आश्रय लिया जा सकता है जब ये दोनों शर्तें पूरी होती हों।"

हमारे विचार में, वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए मत को कायम रखा जा सकता है क्योंकि ऊपर अधिकथित दोनों शर्तें पूरी हो गई हैं। आक्षेपित अधिनियम के अधीन वास्तविक और सारवान् विभेद की प्रत्येक सम्भावना है। साथ ही यह अधिनियम सम्पत्ति के मूल अधिकार से टकराता है।

11. हम इस दलील को मानना कठिन समझते हैं कि अधिनियम की धारा 2 द्वारा अनुध्यात जंगम सम्पति का अधिग्रहण किसी लोक प्रयोजन के लिए ऐसी सम्पत्ति का अधिग्रहण करना है। धारा 2 में "लोक प्रयोजन के लिए" शब्द नहीं हैं और हमारे विचार में उस धारा का ऐसे ढंग से अर्थान्वयन करना अनुज्ञेय नहीं है कि मानो वे शब्द इस धारा के अंश हों। उस धारा में इन शब्दों के न होते हुए भी इन शब्दों को पढ़ना सभी आशयों और प्रयोजनों के लिए न्यायिक विधान की कोटि में आएगा। यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (1894 का अधिनियम 1) की धारा 4 जो भूमि अर्जन के सम्बन्ध में है, लोक प्रयोजन के लिए आवश्यकता का अभिव्यक्त रूप से उल्लेख करती है। इसी प्रकार रिक्वीजीशन एण्ड एक्वीजीशन आफ इम्मूवेबल प्रापर्टी ऐक्ट, 1952 (1952 का अधिनियम 30) की धारा 3 किसी लोक प्रयोजन के लिए सम्पत्ति का अधिग्रहण करने के लिए उपबन्ध करती है। भारत रक्षा अधिनियम, 1939 (1939 का अधिनियम 35) की धारा 2 के अधीन विरचित भारत रक्षा नियमों के नियम 75-क में भी वह प्रयोजन विनिर्दिष्ट किया गया है जिसके लिए सम्पत्ति का अधिग्रहण किया जा सकता है। यदि वह प्रयोजन जिसके लिए सम्पत्ति अधिनियम के अधीन अभिग्रहीत की जा सकती है, यह कहते हुए विनिर्दिष्ट किया गया हो कि कोई लोक प्रयोजन या कोई अन्य विनिर्दिष्ट प्रयोजन होना चाहिए तो धारा 2 को कायम रखना सम्भव हो सकता था जैसा कि **जयन्तीलाल पुरुषोत्तमदास** बनाम **गुजरात राज्य**[1] वाले मामले में गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा किया गया था, किन्तु जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, इस धारा में बिल्कुल भी किसी प्रयोजन का कोई विनिर्देश दिखाई नहीं पड़ता है।

---

[1] (1970) 11 गुजरात लॉ रिपोर्टर 403.

1973(12) eILR(PAT) SC 201

12. यह उपधारित करना गलत होगा कि किसी अधिनियमिति को अवैध घोषित करने में न्यायालयों के कार्य में न्यायिक-अनाधिकार-ग्रहण का तत्व होगा। संविधान ने न्यायालयों को यह अवधारित करने का कार्य सौंपा है कि क्या विधानमण्डल द्वारा अपनाई गई विधियां संविधान के उपबन्धों के अनुरूप हैं। कानून की सांविधानिक विधिमान्यता का न्याय-निर्णयन करने के लिए न्यायालय उस बाध्यता का पालन करते हैं जो उन पर संविधान द्वारा अधिरोपित की गई है। यदि वे किसी कानून के उपबन्धों को असांविधानिक घोषित करने में संकोच करते हैं तो यह न्यायालयों द्वारा अपने उत्तरदायित्व से मुंह मोड़ना होगा यद्यपि वे उपबन्ध संविधान के अनुच्छेदों का अतिक्रमण करने वाले पाए जाएं। अनुच्छेद 32 और 226 संविधान के अभिन्न भाग हैं और मूल अधिकारों तथा संविधान द्वारा प्रदत्त अन्य अधिकारों के प्रवर्तन के लिए उपचार उपबन्धित करते है। न्यायालयों की ओर से, किसी अधिनियमिति के उपबन्धों के, संविधान का अतिलंघन करने वाले पाए जाने पर भी, न्यायिक विनम्रता की किसी धारणा के कारण उन्हें असांविधानिक घोषित करने में संकोच या इंकार से, अनेक मामलों में, व्यथित पक्षकारों के लिए संविधान द्वारा उपबन्धित उपचार छिन जाएगा या किसी भी दशा में वह उपचार नष्ट हो जाएगा। स्वयं अपने हित को प्रभावित करने वाले विषयों में परित्यजन कभी-कभी प्रशंसनीय हो सकता है, किन्तु जिन मामलों में शक्ति उन उपायों से, जो संविधान का अतिक्रमण करते हैं, दूसरों के हित का संरक्षण करने के लिए प्रदत्त की जाती है उनमें परित्यजन के गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। न्यायालयों का यह कार्य है कि वे किसी अधिनियमिति के उपबन्धों को असांविधानिक घोषित करें यदि वह संविधान के किसी अनुच्छेद का उल्लंघन करती हैं। जैसा कि उसकी विधिमान्यता को बहाल रखना उनका कर्त्तव्य होता है, यदि पाया जाए कि वह किसी ऐसी अशक्तता से ग्रस्त नहीं हैं।

13. अब हम उन अन्य मामलों का उल्लेख कर सकते हैं जिनका श्री महाजन ने अवलम्ब लिया है। **हरिशंकर बागला और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इसेन्शियल सप्लाईज़ (टेम्परेरी पावर्स) ऐक्ट, 1946 की धारा 3, 4 और 6 की विधिमान्यता को बहाल रखा था। यह मत व्यक्त किया गया था कि विधानमण्डल को वह विधि और उन विधिक सिद्धांतों की घोषणा करनी चाहिए जिनसे दिए गए मामले

[1] (1955) 1 एस० सी० आर० 380.

नियंत्रित किए जाने हैं और उस विधि को निष्पादित करने वाले पदाधिकारियों या शक्तियुक्त निकाय के मार्गदर्शन के लिए एक मानक उपबन्धित करना चाहिए। उस संदर्भ में इस न्यायालय ने इसेन्शियल सप्लाईज़ (टेम्परेरी पावर्स) ऐक्ट, 1946 के विभिन्न उपबंधों की परीक्षा की थी और इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि विधानमण्डल ने उस अधिनियम में ऐसा सिद्धान्त अभिकथित किया है और ये कि उक्त सिद्धान्त आवश्यक वस्तुओं के प्रदाय को बनाए रखना या उसमें वृद्धि और समान वितरण सुनिश्चित करना तथा उचित कीमतों पर उपलभ्य करना है। यह मत व्यक्त किया गया कि पूर्वोक्त अधिनियम की उद्देशिका और धाराओं के कलेवर में विधायी नीति और अधिनियम का क्षेत्र तथा स्वरूप पर्याप्त रूप से विरचित किया गया है। अपीलार्थियों को इस मामले से कोई सहायता नहीं मिल सकती क्योंकि जैसा कि उपरोक्त से प्रतीत होगा, विधानमण्डल ने विधि की नीति और उन विधिक सिद्धान्तों की घोषणा नहीं की है जिनसे अधिनियम के अधीन प्राधिकारियों में निहित विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए उन्हें शासित किया जाना है जिससे प्रस्तुत मामले में हमारा सम्बन्ध है।

14. अपीलार्थी की ओर से निर्दिष्ट किया गया एक अन्य मामला **राम नारायण मेधी बनाम मुम्बई राज्य**[1] है जिसमें लैण्ड्स (अमेण्डमेण्ट) ऐक्ट, 1956 की आलोचना की गई थी। अधिनियम के उपबन्धों की परीक्षा करने पर यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि विधानमण्डल ने उद्देशिका में अधिनियम की नीति अधिकथित की है और अधिनियम की धारा 5, 6 और 7 में विस्तृत सिद्धान्तों का उल्लेख किया है। तदनुसार न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अधिनियम द्वारा राज्य सरकार पर आर्थिक जोत की अधिकतम क्षेत्र में परिवर्तन करने की अनियन्त्रित शक्ति प्रदत्त नहीं की गई है। इस सन्दर्भ में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि जहां विधानमण्डल विधान की नीति और विस्तृत सिद्धान्तों को निर्धारित कर देता है वहां विस्तृत बातों को कार्यपालिका द्वारा नियत किए जाने के लिए छोड़ने के लिए कोई वर्जन नहीं हो सकता और शक्ति के ऐसे प्रत्यायोजन से अधिनियमिति दूषित नहीं हो सकती। इस मामले में भी अपीलार्थियों को कोई मदद नहीं मिल सकती क्योंकि, जैसा कि उपरोक्त से प्रतीत होगा, विधानमण्डल ने प्रस्तुत मामले में आक्षेपित अधिनियम में विधान की नीति और विस्तृत सिद्धान्तों को निर्धारित नहीं किया है।

15. अन्तिम मामला जिसका अपीलार्थियों की ओर से अवलम्ब लिया गया है **पी० जे० इरानी बनाम मद्रास राज्य**[2] वाला मामला है। इस मामले में मद्रास

[1] (1959) सप्लीमेण्ट 1 एस० सी० आर० 489.

[2] (1962) 2 एस० सी० आर० 169.

बिल्डिंग्स (लीज एण्ड रेंट कन्ट्रोल) ऐक्ट, 1949 की धारा 13, की जिसके अधीन किसी निर्माण या सन्निर्माण के किसी वर्ग को अधिनियम के सब या किसी उपबंध के प्रवर्तन से छूट अनुदत्त की जा सकती है, सांविधानिक विधिमान्यता की इस आधार पर आलोचना की गई थी कि उक्त धारा से संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है। इस न्यायालय ने उस धारा की विधिमान्यता को इस आधार पर बहाल रखा था कि सरकार में निहित स्वविवेकाधिकार शक्ति के प्रयोग के लिए उद्देशिका द्वारा और अधिनियम के प्रभावी उपबन्धों द्वारा पर्याप्त मार्ग-दर्शन दिया गया है। यह मत व्यक्त किया गया कि किसी निर्माण या सन्निर्माण के वर्ग को छूट देने के लिए पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 13 के अधीन शक्ति का प्रयोग उन मामलों में किया जाना था जिसमें अधिनियम द्वारा दिए गए संरक्षण से भूस्वामियों के लिए कठिनाई उत्पन्न होती है या वह अभिधारी की निन्दा का पात्र होता है। चूंकि वर्तमान मामले में आक्षेपित अधिनियम के उपबंध वैवेकिक शक्ति के प्रयोग के लिए कोई मार्गदर्शन प्रदत्त नहीं करते हैं इसलिए हमारे विचार में उपरोक्त मामले से अपीलार्थियों को अधिक सहायता नहीं मिल सकती।

16. इन अपीलों में कोई बल नहीं है जो तदनुसार असफल होती हैं और एक सुनवाई के खर्चे सहित खारिज की जाती हैं।

न्यायाधिपति मैथ्यू—

17. इन अपीलों में अन्ततः प्रश्न यह है कि क्या ईस्ट पंजाब मूवेबल प्रापर्टी (रिक्वीजीशनिंग) ऐक्ट, 1947 (1947 का पूर्वी पंजाब अधिनियम XV) जिसे इसमें इसके पश्चात् अधिनियम कहा गया हैं, की धारा 2 के उपबन्ध संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करते हैं और इसीलिए अविधिसम्मत हैं।

18. अधिनियम की धारा 2, 3, 4, और 8 में उपबन्धित है—

*"2(1) यदि राज्य सरकार ऐसा करना आवश्यक और समीचीन समझती है तो वह लिखित आदेश द्वारा किसी जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण कर सकती है और साथ ही ऐसे आदेश कर सकती है जो वह अधिग्रहण के सम्बन्ध में आवश्यक या समीचीन समझे;

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"2 (1). The State Government if it considers it necessary or expedient so to do, may by order in writing requisition any moveable property and may make such further orders as may be necessary or expedient in connection with the requisitioning:

परन्तु धार्मिक पूजा के प्रयोजन के लिए प्रयुक्त कोई सम्पत्ति या कोई विमान अथवा विमान का भाग बनाने वाली कोई चीज़ या विमान के प्रचालन, मरम्मत या अनुरक्षण से सम्बन्धित कोई चीज़ अधिगृहीत नहीं की जाएगी।

(2) जहां राज्य सरकार उपधारा (1), के अधीन कोई आदेश करती है वहां वह उस सम्पत्ति का उपयोग या व्यवहार ऐसी रीति से कर सकेगी, जैसा उसे समीचीन प्रतीत हो।

3. (1) राज्य सरकार किसी भी समय धारा 2 के अधीन अपने द्वारा अधिगृहीत किसी भी जंगम सम्पत्ति को उसके स्वामी पर सूचना तामील करके या जहां स्वामी आसानी से उपलभ्य न हो या स्वामित्व विवादग्रस्त हो वहां राजपत्र में यह कथित करते हुए सूचना प्रकाशित करके कि उक्त प्राधिकारी ने इस धारा के अनुसरण में इसे अर्जित करने का विनिश्चय किया है, अर्जित कर सकेगी।

(2) जहां उपधारा (1) के अधीन अर्जन की कोई सूचना सम्पत्ति के स्वामी पर तामील की जाती है या राजपत्र में प्रकाशित की जाती है, वहां उस दिन के आरम्भ से जिसकी सूचना इस प्रकार तामील या

Provided that no property used for the purpose of religious worship and no aircraft or anything forming part of an aircraft or connected with the operation, repair or maintenance of aircraft, shall be requisitioned.

(2) Where the State Government makes any order under sub-section (1), it may use or deal with the property in such manner as may appear to it to be expedient.

3. (1) The State Government may at any time acquire any moveable property requisitioned by it under section 2 by serving on the owner thereof, or, where the owner is not readily traceable or the ownership is in dispute, by publishing in the Official Gazette, a notice stating that the said authority has decided to acquire it in pursuance of this section.

(2) Where a notice of acquisition is served on the owner of the property or published in the Official Gazette under sub-section (1) then at the beginning of the day on

1973(12) eILR(PAT) SC 201

प्रकाशित की जाए वह सम्पत्ति सब भारों से मुक्त होकर राज्य सरकार में निहित हो जाएगी और उसके अधिग्रहण की अवधि समाप्त हो जाएगी।

4. इस अधिनियम के अधीन अधिगृहीत या अर्जित किसी जंगम सम्पत्ति के स्वामी को ऐसा प्रतिकर संदत्त किया जाएगा जैसा राज्य सरकार अवधारित करे।

8. कृत्यों का प्रत्यायोजन : राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचित आदेश द्वारा यह निदेश दे सकेगी कि इस अधिनियम द्वारा उसे प्रदत्त कोई शक्ति या उस पर अधिरोपित कोई कर्त्तव्य, ऐसी परिस्थितियों में और ऐसी शर्तों के अधीन यदि कोई हों, जैसी निदेश में विनिर्दिष्ट की जाएं, ऐसे अधिकारी द्वारा, जो कि इस प्रकार विनिर्दिष्ट किया जाए, प्रयुक्त की जाएगी या निर्वहन किया जाएगा।"

19. यह अधिनियम संविधान पूर्व अधिनियम है। चूंकि भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 299 (2) के उपबन्ध लागू नहीं होते थे इसलिए जब यह अधिनियम अधिनियमित किया गया था तो यह पूर्णतः विधिमान्य था। और चूंकि यह अधिनियम अस्तित्वयुक्त विधि है इसलिए यह अधिनियम इस आधार पर आक्षेपित नहीं किया जा सकता कि यह संविधान के अनुच्छेद 31(2) [देखिए अनुच्छेद 31(5)] के अधीन मूल अधिकार का अतिक्रमण करता है। दूसरे शब्दों में, अधिनियम में यह अभिव्यक्त रूप से अधिकथित करना कि जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण केवल लोक प्रयोजन के लिए किया जा सकता है और प्रतिकर की रकम या उसके लिए सिद्धान्त नियत करना आवश्यक नहीं था।

---

which the notice is so served or published, the property shall vest in the State Government free from all encumbrances and the period of requisition thereof shall end.

4. The owner of any moveable property requisitioned or acquired under this Act shall be paid such compensation as the State Government may determine.

8. Delegation of functions: The State Government may by order notified in the Official Gazette, direct that any power conferred or any duty imposed on it by this Act shall in such circumstances and under such conditions, if any, as may be specified in the direction be exercised or discharged by such officer as may be so specified."

1973(12) eILR(PAT) SC 201

20. अतः प्रश्न यह है कि क्या उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके कि अधिनियम की धारा 2 संविधान के अनुच्छेद 14 की अतिक्रमणकारी है और सम्पूर्ण अधिनियम को इस कारण अवैध घोषित करके ठीक किया है कि धारा 2 अधिनियम के शेष उपबन्धों से पृथक्करणीय नहीं है।

21. मैं धारा 2 को लूं और देखूं कि क्या उसके उपबन्ध किसी भी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 14 के अतिक्रमणकारी हैं। वह धारा राज्य सरकार को लिखित आदेश द्वारा किसी भी जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण करने की शक्ति प्रदत्त करती है यदि वह ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझे। इस धारा में उस प्रयोजन का उल्लेख नहीं है जिसके लिए कोई जंगम सम्पत्ति अधिगृहीत की जा सकती है। इसीलिए उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण करने के लिए राज्य सरकार को बिना किसी निदेशन के अनियंत्रित विवेकाधिकार दिया गया है और इससे शक्ति के प्रयोग में विभेद होगा।

22. मैं यह असम्भव समझता हूं कि कोई इस धारा को इस रूप में पढ़े कि यह लोक प्रयोजन से भिन्न किसी प्रयोजन के लिए जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण करने की शक्ति प्रदत्त करती है। हमें इस धारा के औचित्य की जांच इसके शब्दों के निर्देश में करनी चाहिए, उसमें नहीं जो वह अपनी विचित्र सनक के प्रभाव में कर सकता है जिसे राज्य सरकार धारा 8 के अधीन शक्ति प्रत्यायोजित करे। जो कुछ जिला मजिस्ट्रेट अपनी मनमर्जी से कर सकता है वह संभवतः राज्य सरकार और धारा 8 के अधीन प्रदत्त प्रत्यायोजन की शक्ति के औचित्य को परखने के लिए सुसंगत हो सकता है किन्तु तब इसकी कोई सुसंगतता नहीं है जब हम धारा 2 के औचित्य पर विचार कर रहे हों जहां हमारा सम्बन्ध केवल राज्य सरकार को प्रदत्त शक्ति से है।

23. यह नितान्त महत्त्वहीन है कि धारा विनिर्दिष्टतया यह उल्लेख नहीं करती है कि जंगम संपत्ति के अतिग्रहण की शक्ति का प्रयोग किस प्रयोजन के लिए किया जा सकता है। मुझे यह सोचना चाहिए कि 'लोकहित', 'लोक भलाई', या 'लोक प्रयोजन' जैसे पदों की उपस्थिति या अनुपस्थिति पर कोई बात निर्भर नहीं करती है। सार वही होता है चाहे विधानमण्डल 'समस्या से निपटने के लिए' कहता हो या 'लोकहित में समस्या से निपटने के लिए' या 'लोक भलाई के लिए शक्ति का प्रयोग' या लोक प्रयोजन के लिए कहता हो। न्यायालय और सभी पक्षकार इसकी उपधारणा करते हैं कि विधानमण्डल हमेशा लोकहित का संरक्षण, लोक उद्देश्य सिद्ध करना चाहता है या लोक भलाई के लिए या लोक प्रयोजन के लिए शक्तियों का प्रयोग करने के लिए कई कार्य करता

1973(12) eILR(PAT) SC 201

है और हमेशा यह आशय रखता है कि प्रशासक न्यायसंगत रूप से और युक्तियुक्त रूप से कार्य करते हैं चाहे विधानमण्डल ने कानून में ऐसा कहा हो या नहीं [देखिए कैनेथ कल्प डेबिस, "एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ ट्रेटाइज़", (1959) खण्ड, 1 पृ० 87] प्रत्येक विधायी निकाय के बारे में यह उपधारित करना चाहिए कि उसने वह सच्चाई, अच्छाई, और सबसे ऊपर लोकहित तथा लोक भलाई चाही है और वह ऐसा कहती है या नहीं, इससे बिल्कुल भी सरोकार नहीं है। इस धारा के पढ़ने पर क्या कोई न्यायालय उस बात के लिए यह कह सकता है या उसने कहा है कि राज्य सरकार को प्रदत्त शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। अस्तित्वयुक्त होने का हक लोक भलाई करने या लोकहित पूरा करने का उसका दावा है। इसलिए जब धारा में यह लिखा हो कि यदि राज्य सरकार ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझे तो वह लिखित आदेश द्वारा किसी भी जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण कर सकती है, तो इसका केवल यही अर्थ हो सकता है कि जब वह ऐसा करना लोकहित या लोक भलाई या लोक प्रयोजन के लिए आवश्यक या समीचीन समझे। वह धारा में विवक्षित है। हमारे महाप्रभु ईसा के सन् 1973 में कोई भी इस धारा को किसी अन्य रीति से न तो पढ़ सकता है और न पढ़ेगा। वह प्रयोजन जिसके लिए कोई शक्ति दी गई हो, समर्थकारी अधिनियम में विनिर्दिष्ट न हो, किन्तु इससे उस प्रयोजन का अनुमान लगाने से और यह अभिनिर्धारित करने से कि शक्ति का दुरुपयोग हुआ है, न्यायालय को आवश्यक रूप से रोका नहीं गया है। (हुड फिलिप्स कृत "कांस्टिट्यूशनल एण्ड एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ" के पृष्ठ 623-4 देखें)

24. वैवेकिक शक्ति के प्रदत्त किए जाने को इस न्यायालय ने अनेक मामलों में उस निकाय या प्राधिकारी के उच्च-स्तरीय होने के आधार पर बहाल रखा है जिस पर वह शक्ति प्रदत्त की गई हो। **गुरुबचन सिंह** बनाम **मुम्बई राज्य**[1] में न्या० मुखर्जी ने पुलिस आयुक्त पर प्रदत्त निष्कासन की शक्ति को अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर बहाल रखा था कि—

> "............यह शक्ति छोटे अधिकारियों में निहित नहीं की गई है बल्कि सर्वोच्च पंक्ति के प्राधिकारियों में, जैसे आयकर आयुक्त और केन्द्रीय राजस्व बोर्ड में निहित है, जो सम्बन्धित आयकर अधिकारियों द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर कार्य करते हैं।"

25. **वीरेन्द्र** बनाम **पंजाब राज्य**[2] वाले मामले में मु० न्या० दास ने कहा था—

[1] (1952) एस० सी० आर० 737.

[2] (1958) एस० सी० आर० 308.

"...........प्रथमतः, प्रथम बार में स्वविवेकाधिकार स्वयं राज्य सरकार को दिया गया है, बहुत अधीनस्थ अधिकारी को नहीं जैसे अनुज्ञापन अधिकारी जैसे द्वारका प्रसाद वाले मामले में किया गया था।.........यह सच है कि राज्य सरकार किसी अधिकारी या व्यक्ति को शक्ति प्रत्यायोजित कर सकती है किन्तु यह तथ्य कि प्रत्यायोजित शक्ति का प्रयोग स्वयं राज्य सरकार द्वारा किया जाना था, प्रत्यायोजन की इस शक्ति के दुरुपयोग के विरुद्ध कुछ रक्षोपाय था।"

संक्षेप में, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य सरकार में या किसी उच्च लोक अधिकारी में स्वविवेकाधिकार का निहितन इस बात की प्रत्याभूति है. कि शक्ति का प्रयोग विधानमण्डल द्वारा आशयित प्रयोजन के लिए एवं युक्तियुक्त मानक के आधार पर किया जाएगा।

26. राज्य के कृत्यों के प्रचुर प्रोद्भवन (अर्थात् वृद्धि) के साथ-साथ यह आवश्यक हो गया है कि राज्य के प्रशासनिक निकाय पर व्यापक वैवेकिक शक्तियां निहित की जाएं। सरकारी कार्यकर्ताओं पर विस्तृत प्रशासनिक एवं वैवेकिक शक्तियां निहित किए बिना आधुनिक राज्य का कार्य नहीं चल सकता। प्रायः व्यावहारिक तौर पर सरकारी कार्यकर्ता में विस्तृत विवेकाधिकार दिए बिना उसमें शक्ति देना व्यर्थ होगा; क्योंकि लोक कार्यों में जो स्थितियां पैदा हो सकती हैं वे नाना प्रकार की हैं और बहुत सी स्थितियां प्रायः अप्रत्याशित एवं अचिन्तित होती हैं। किसी व्यक्ति में कोई वैवेकिक शक्ति निहित करने में हमेशा भारी खतरा होता है क्योंकि उसका दुरुपयोग किया जा सकता है और उसका प्रयोग वैवेकिक रीति से किया जा सकता है, तथापि विधानमण्डल उस शक्ति की रक्षोपायों से चौहद्दी करने का काफी यत्न कर सकता है।

27. मैं समझता हूं कि धारा में प्रयुक्त 'आवश्यक या समीचीन' शब्दों को जब शक्ति प्रदत्त करने के विवक्षित प्रयोजन के सम्बन्ध में पढ़ा जाए तो वह सरकार को उपयुक्त मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए पर्याप्त है। 'आवश्यक' का अर्थ है जो अभिन्न, जरूरी या अनिवार्य हो और समीचीन का अर्थ है 'वांछित परिणाम के लिए उपयोगी या प्रयोजन के लिए उपयुक्त'। यह समझना होगा कि नीति या सिद्धान्त अधिकथित करते समय विधानमण्डल उस समस्या को मस्तिष्क में रखने के लिए आबद्ध है जो सरकार को सुलझानी है। किसी सम्पत्ति विशेष का अधिग्रहण किया जाना चाहिए या नहीं इस पर विचार करने के लिए नाना प्रकार की बातें और परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं। विधानमण्डल द्वारा विनिश्चय करना ठीक प्रतीत होता है कि इससे प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा

यदि किसी जंगम सम्पत्ति का अधिग्रहण करने के लिए विचार किए जाने वाली सभी सुसंगत बातों को परिभाषित या वर्णित किया जाए।

28. आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3 (1) इस प्रकार है—

*"3 (1) यदि केन्द्रीय सरकार की राय हो कि किसी आवश्यक वस्तु के प्रदाय को बनाए रखने और बढ़ाने के लिए ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है.............. ।"

आवश्यक प्रदाय (अस्थायी शक्तियां) अधिनियम, 1946 की धारा 3 (1) में यह उपबन्धित है—

"केन्द्रीय सरकार, जहां तक उसे किसी आवश्यक वस्तु के प्रदाय बनाए रखने और बढ़ाने के लिए आवश्यक या समीचीन प्रतीत हो ...." ।

इन सब उपबन्धों में केन्द्रीय सरकार को जिसे यह शक्ति प्रदत्त की गई है, एक पुरोभाव्य शर्त के रूप में यह विनिश्चय करना होता है कि क्या प्राप्तव्य प्रयोजन के सम्बन्ध में शक्ति का प्रयोग करना आवश्यक या समीचीन है और शक्ति का स्वरूप एवं प्राप्तव्य प्रयोजन को ध्यान रखते हुए, विधानमण्डल ने लक्ष्यपूर्ति के लिए शक्ति के प्रयोग को नम्य रहने दिया और इस प्रयोजन के लिए 'आवश्यक या समीचीन' अभिव्यक्ति का ठीक ही प्रयोग किया। कोई विशेष अधिग्रहण किसी विशेष प्रयोजन के लिए समीचीन है या नहीं, इसके लिए अनेक बातों पर विचार करना होता है। विधानमण्डल के लिए आवश्यक नहीं था कि वह राज्य सरकार को उसके मार्गदर्शन के लिए और अधिक विनिर्दिष्ट सूत्र प्रदान करता जहां कि असीम परिवर्तनशील अवस्थाओं के लिए नम्यता और अनुकूलन विधायी स्कीम के सार हैं। मेरे विचार में यदि "आवश्यक या समीचीन" अभिव्यक्ति को धारा में विवक्षित प्रयोजन, अर्थात् लोकहित या प्रयोजन के संदर्भ में पढ़ा जाए तो यह सरकार द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली शक्ति और विवेकाधिकार के प्रयोग को उचित दिशा प्रदान करती है।

29. यह विधि के शासन के प्रतिकूल नहीं है कि लोक कृत्य करने के लिए लोक अधिकारियों में शक्तियां निहित की जाएं। विधि के शासन में यह अपेक्षित

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"3 (1) The Central Government, so far as it appears to it to be necessary or expedient for maintaining and increasing supplies of any essential commodity........"

है कि लोक अधिकारियों द्वारा शक्तियों का कोई भी दुरुपयोग न्यायालयों के नियंत्रणाधीन होना चाहिए।

30. **मुम्बई राज्य** बनाम **एफ० एन० बलसारा**[1] में एक विचारणीय प्रश्न यह था कि क्या बम्बई प्राहिबीशन ऐक्ट, 1949 (1949 का अधिनियम 25) की धारा 52, 53 और 139 (सी) के उपबन्ध विधिमान्य हैं। इस अधिनियम की धारा 52 प्राधिकृत अधिकारियों को इन मामलों में अनुज्ञप्तियों, अनुज्ञापत्र आदि अनुदत्त करने के लिए सशक्त करती है जिनके लिए विनिर्दिष्ट रूप से उपबन्ध न किया गया हो। धारा 53 इस प्ररूप और उन शर्तों के बारे में है जिसमें और जिसके अन्तर्गत अनुज्ञप्तियां आदि अनुदत्त की जा सकती हैं और धारा 139 (सी) में कथित है कि राज्य सरकार साधारण या विशेष आदेश द्वारा, किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग को अथवा किसी संस्था या संस्थाओं के वर्ग को अधिनियम के सब या किसी उपबन्ध या तद्धीन बनाए गए किसी नियम, विनियम या आदेश के पालन से छूट दे सकेगी। बम्बई उच्च न्यायालय ने इन धाराओं को अविधिसम्मत अभिनिर्धारित कर दिया था क्योंकि उनमें शक्तियों के प्रयोग के लिए कोई मार्गदर्शन उपबन्धित नहीं था। अपील में इस न्यायालय ने यह कहते हुए इन धाराओं को विधिमान्य अभिनिर्धारित किया—

> "विधान बनाते समय विधानमण्डल, सभी भावी आकस्मिकताओं को पूर्वचिन्तित और उनके लिए उपबन्ध नहीं कर सकता और धारा 52 प्राधिकृत अधिकारियों को आकस्मिकताओं का मुकाबला करने में और पैदा होने वाली विभिन्न स्थितियों पर काबू पाने में समर्थ बनाने से अधिक कुछ नहीं करती है। यही बातें धारा 53 और धारा 139 (सी) के सम्बन्ध में लागू होंगी।"

31. कोई साधारण विधि अधिनियमित करने में हर स्थिति को पूर्वाचिन्तित करना या हर आकस्मिकता की कल्पना करना और ऐसी स्थितियों या ऐसी आकस्मिकताओं की बाबत पूर्णतः या भागतः विधि के प्रवर्तन को अपवर्जित करके उसके बारे में विशेष रूप से उपबन्ध करना संभव नहीं है। अतः कानूनों द्वारा कार्यपालिका पर कोई शक्ति इसलिए प्रदत्त की जाती है कि वह व्यक्तियों या निकायों को अधिनियम के उपबन्धों में से सब या किसी से छूट दे सके।

32. अपूर्वचिन्तित स्थितियों में कार्यवाही करने के लिए शक्ति अनुदत्त करने में कोई अयुक्तियुक्त बात नहीं है। यदि शक्ति के प्रयोग के लिए कोई

---

[1] (1951) एस० सी० आर० 682.

मार्गदर्शन नहीं है तो किसी कृत्यकारी में शक्ति निहित करने को अवैध घोषित करने की आवश्यकता नहीं है। अयुक्तियुक्तता उसके प्रयोग में खोजनी होगी, उसके अस्तित्व में नहीं। मुझे ज्ञात है **के० टी० मूपिल नायर** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में न्यायालय ने **मुम्बई राज्य** बनाम **एफ० एन० बलसारा**[2] वाले मामले में अपनाए गए मत को दृष्टिगत रखे बिना ट्रावनकोर कोचीन लैण्ड टैक्स ऐक्ट, 1955 की धारा 7 को अवैध घोषित कर दिया। यह धारा राज्य सरकार को भूमि कर के संदाय से छूट अनुदत्त करने की शक्ति देती थी। मैं केवल इतना कहना चाहूंगा कि सूखा, महामारी आदि जैसी अनेक आकस्मिकताओं की कोई भी कल्पना कर सकता है जिनमें कर से छूट देना युक्तियुक्त होगा।

33. **बीड़ी सप्लाई कम्पनी** बनाम **भारत संघ और अन्य**[3] वाले मामले में बहुसंख्यक निर्णय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि इण्डियन इन्कम टैक्स ऐक्ट, 1922 की धारा 22 (2) के साथ पठित धारा 5 (7क) मामलों का अन्तरण सर्वत्र प्राधिकृत नहीं करती थी और परिणामस्वरूप धारा 5 (7क) की सांविधानिक विधिमान्यता पर विचार करना आवश्यक नहीं था, क्योंकि आयकर प्राधिकारियों ने एक अवैध कार्यपालिक आदेश के द्वारा पिटीशनर को लिया और उसके सभी मामलों को असीमित समय के लिए एक सार्वत्रिक आदेश द्वारा अन्तरित कर दिया। आदेश स्पष्टतः विभेदकारी था क्योंकि पिटीशनर को पर्याप्त असुविधा और परेशानी पहुंचाना परिकल्पित था। न्या० बोस ने परिणाम में सहमति दी किन्तु इण्डियन इन्कम टैक्स ऐक्ट, 1922 की धारा 5 (7क) को अनुच्छेद 14 की अतिक्रमणकारी होने के रूप में अधिकारातीत अभिनिर्धारित कर दिया।

34. **पन्नालाल बिन्जराज** बनाम **भारत संघ**[4] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि किसी निर्धारिती का मामला अन्तरित करके उसे असुविधा और परेशानी कारित करना विनिश्चायक नहीं था, कि एक विशिष्ट परिक्षेत्र के अन्दर निर्धारित किए जाने का अधिकार आत्यन्तिक अधिकार नहीं था बल्कि कर संग्रहण की आकस्मिकताओं के अध्यधीन था और यह कि यदि उसी एक वर्ग या प्रवर्ग के अन्तर्गत आने वाले व्यक्तियों के साथ विभेदात्मक व्यवहार की संभावना भी हो, तो भी ऐसी संभावना से विधान का वह अंश

---

[1] (1961) 3 एस० सी० आर० 77.

[2] (1951) एस० सी० आर० 682.

[3] (1956) एस० सी० आर० 267.

[4] (1957) एस० सी० आर० 233.

आवश्यक रूप से अविधिमान्य नहीं हो जाएगा। न्यायालय ने यह कहा था कि जो शक्ति वैवेकिक है वह आवश्यक रूप से विभेदात्मक नहीं होती है और वहां शक्ति के दुरुपयोग की आसानी से कल्पना नहीं की जा सकती जहां विवेकाधिकार उच्च पदाधिकारियों में निहित हों। न्यायालय के अनुसार यह उपधारणा होती है कि लोक सरकारी पदाधिकारी अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन ईमानदारी से और विधि के अनुसार करेंगे, यह कि जब तक इसके प्रतिकूल दर्शित न कर दिया जाए, तब तक किसी विशिष्ट विधि का प्रशासन कुदृष्टि और असमानता से नहीं किया जाएगा। न्यायालय का मत था कि ऐसे भी मामले हो सकते हैं जहां शक्ति के अनुचित प्रयोग से पक्षकारों के प्रति विभेदात्मक व्यवहार हो और अन्याय होगा, किन्तु, ऐसे विभेदात्मक व्यवहार की संभावना से वह विधान आवश्यक रूप से अविधिमान्य नहीं हो सकता और जहां ऐसी शक्ति का दुरुपयोग किया गया हो वहां व्यथित पक्षकारों के लिए विधि के अधीन पर्याप्त उपचार प्राप्त हैं और ऐसे मामलों में जो अवैध घोषित करना होगा वह उपबन्ध नहीं है जो प्राधिकारियों में ऐसी शक्ति निहित करता है बल्कि स्वयं शक्ति के दुरुपयोग को अवैध घोषित करना होगा। न्यायालय ने कहा था कि जो विवेकाधिकार संविधान द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकारों के सम्बन्ध में प्रयुक्त किया जाता है उसमें और कानूनों द्वारा दिए गए साधारण अधिकारों में अंतर है और किसी कृत्यकारी में निहित उस विवेकाधिकार पर दो दृष्टियों से विचार करना होगा : अर्थात् (1) क्या उससे किसी वास्तविक और सारवान् विभेद होने की संभावना है, और (2) क्या यह संविधान द्वारा प्रत्याभूत किसी मूल अधिकार में हस्तक्षेप करता है और यदि "ये दोनों शर्तें पूरी हो जाएं तभी अनुच्छेद 14 का आह्वान् किया जा सकता है।"

35. अनुच्छेद 14 मूल अधिकार अर्थात्, विधि के समक्ष समता, प्रदत्त करता है। यह कहना कठिन है कि उस व्यक्ति के लिए जो उस अधिकार का प्रकथन करता है, यह साबित करना क्यों आवश्यक है कि किसी अन्य मूल अधिकार का अतिक्रमण किया गया है। विधि के समक्ष समता की संकल्पना विवाद्य अधिकार की प्रकृति के साथ परिवर्तित नहीं होती है। दूसरे शब्दों में, क्या कोई संकटग्रस्त अधिकार मूल है या नहीं, उस समय बिलकुल महत्त्वहीन होता है जब हम विधि के समक्ष समता के प्रश्न पर विचार कर रहे हों।

36. स्थिति चाहे जो कुछ हो, मेरे विचार में, यह विनिर्णय दो प्रस्थापनाओं के लिए प्रामाणिक है : (1) यदि कोई शक्ति विभेदकारी भी हो तो भी यह आवश्यक नहीं है कि उसका प्रयोग विभेदकारी होगा, और (2) यदि स्वविवेकानुसार शक्ति के प्रयोग के लिए कोई मार्ग-दर्शन अधिकथित न किए

जाएं तो भी वह धारा, जो शक्ति प्रदत्त करती है अवैध घोषित नहीं की जानी चाहिए बल्कि उसके अधीन शक्ति का वह प्रयोग ही अवैध घोषित किया जाना चाहिए जो अयुक्तियुक्त या विभेदकारी है।

37. संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान में समता वाले खण्ड पर विचार प्रकट करते हुए प्रोफेसर विलिस (विलिस, "कान्स्टिट्यूशनल लॉ," पृष्ठ 586-7) ने यह कहा है—

> "संभवतः इस विषय के बारे में सर्वोत्तम मत यही है कि "due process" (सम्यक् प्रक्रिया) और "equality" (समता) का मार्गदर्शन रहित शक्ति के प्रदत्तकरण मात्र से अतिक्रमण नहीं होता है किन्तु जिनको वह शक्ति प्रदत्त की गई है उनके द्वारा उसका मनमाने ढंग से प्रयोग करने से होता है (देखिए प्लाइमाउथ कोल कं० ब० पेन्नसिलवेनिया : 1914, 232 यू० एस० 531")।

इस प्रस्थापना के पीछे सिद्धान्त यह है कि यद्यपि मार्ग दर्शन के बिना वैवेकिक शक्ति प्रदत्त करने से इसका प्रयोग विभेदात्मक रीति से हो सकता है, कोई भी यह उपधारणा नहीं करेगा कि उसका ऐसे प्रयोग किया जाएगा। इसके विपरीत, उपधारणा यह है कि लोक कृत्यकारी विधि का प्रशासन उचित रूप से करेंगे। न्यायालय किसी कानून को इस उपधारणा के आधार पर अवैध घोषित नहीं करते हैं कि उसके अधीन शक्ति से निहित व्यक्ति उसका प्रयोग कुदृष्टि और असमानता से करेगा। विषय का भाव यह है कि ऐसे मामले में स्वयं विधि दोषपूर्ण नहीं होती क्योंकि उसका प्रशासन निष्पक्ष एवं युक्तियुक्त रीति से किया जा सकता है जिसका दृष्टान्त यह मामला है। जब तक इस देश में न्यायालय खुले हैं और शक्ति के दुरुपयोग का सिद्धान्त विद्यमान है तब तक इसमें सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है कि किसी शक्ति का प्रयोग केवल इसलिए मनमानी और विभेदात्मक रीति से किया जाएगा, क्योंकि शक्ति का प्रत्यक्षतः इस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है। राज्य सरकार या ऐसे ईमानदार अधिकारी के लिए जिसे शक्ति प्रत्यायोजित की गई हो, इस बात की पूरी छूट है कि वह उसका प्रयोग युक्तियुक्त एवं अविभेदकारी रीति से करे। तब न्यायालय को कोई विधि अवैध घोषित करने की चिन्ता क्यों हो? न्यायालय की शक्ति का उचित रूप से तभी आह्वान किया जाता है जब विधि के अधीन शक्ति के प्रयोग से कोई वास्तव में व्यथित होता है। हमें काल्पनिक बातों के आधार पर जिन्हें एक भ्रष्ट अधिकारी कर सकता है, किसी विधि के अवैध घोषित करने में अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए। किसी अधिनियम की सांविधानिकता निर्धारित करते समय हमें उसका अर्थान्वयन इस रीति से करना चाहिए कि उसे कायम रखा जा

सके। उस प्रयोजन के लिए हर संभव उपधारणा का प्रयोग किया जाएगा। हमारा प्रयत्न परिरक्षण का होना चाहिए, विनाश का नहीं। सरकार की समकक्ष शाखा के प्रति सम्मान एवं सांविधानिकता की उपधारणा द्वारा यही अपेक्षित है"। इससे पूर्व कि सम्यक् रूप से अधिनियमित कोई विधि न्यायिक तौर पर अकृत की जाए, वह संविधान के किसी अभिव्यक्त निर्बन्धन द्वारा वर्जित होनी चाहिए। उन लोगों के प्रति जिन पर विधियां बनाने का दायित्व है, सम्मान प्रदर्शित करने का हमारा कर्तव्य इस संदर्भ में बहुत सुसंगत है। इस विचार में जो न्यायिक विनम्रता का दृष्टिकोण व्यादिष्ट है वह न्यायिक कृत्य का त्यागना नहीं है यह अपनी सीमाओं का सम्यक् पालन है। जैसा कि मार्शल ने कहा है— "न्यायिक अधिकरण के समक्ष उन मामलों से नाजुक मामले नहीं लाए जा सकते जिनमें विधायी कार्यों की सांविधानिकता अन्तर्वलित हो" और जैसा कि मैंने कहा था, विधानमण्डल के प्रति उचित सम्मान के लिए यह अपेक्षित है कि उसकी विधियों की बाध्यता की अनावश्यक रूप से और अकारण ही आलोचना नहीं करनी चाहिए।

38. यदि वह शक्ति विधिमान्य है जो अधिनियम की धारा 2 के अधीन राज्य सरकार को प्रदत्त की गई है तो मुझे इस शक्ति के प्रत्यायोजित किए जाने में कोई आपत्ति दिखाई नहीं पड़ती। मैं यह उपधारणा नहीं कर सकता कि राज्य सरकार पदानुक्रम में प्रत्यायोजिती की हैसियत को ध्यान में रखे बिना शक्ति को प्रत्यायोजित कर देगी। हमारे सामने ऐसे एक भी मामले का हवाला नहीं दिया गया जहां यह अभिनिर्धारित किया गया हो कि व्यापक वैवेकिक शक्तियां इस कारण दोषपूर्ण हैं कि राज्य या अन्य किसी निकाय को जिसे वे प्रदत्त की गई हैं, किसी अन्य निकाय या व्यक्तियों को प्रत्यायोजित करने की शक्ति है।

39. उच्च न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार नहीं किया है कि प्रश्नगत ट्रक का अधिग्रहण करने में ज़िला मजिस्ट्रेट अयुक्तियुक्त रूप से या विभेदकारी रीति से कार्य कर रहा था या ट्रक का अधिग्रहण लोक प्रयोजन के लिए नहीं था। मैं समझता हूं कि ज़िला मजिस्ट्रेट द्वारा ट्रक का अधिग्रहण लोक प्रयोजन के लिए था और ऐसा करने में उसकी कार्यवाही पूर्णतः युक्तियुक्त थी।

40. अधिनियम की धारा 2 को अविधिमान्य घोषित करने के लिए उच्च न्यायालय ने अन्य कोई कारण नहीं दिया है। यदि उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कारण से अधिनियम की धारा 2 के उपबंध अविधिमान्य नहीं हैं तो जिस आधार पर अधिनियम के अन्य उपबंधों को उच्च न्यायालय ने अवैध घोषित किया था वह कायम नहीं रह सकता।

1973(12) eILR(PAT) SC 201

41. मेरे मतानुसार, धारा 2 के उपबंध अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं करते हैं और इस कारण से अविधिमान्य नहीं हैं। ज़िला मजिस्ट्रेट द्वारा की गई कार्यवाही को मैं बहाल रखता हूं और अपीलों को खर्चे सहित मंजूर करता हूं।

आदेश

42. बहुमत के विनिश्चय के अनुसार अपील खर्चे सहित खारिज की जाती हैं। खर्चा सुनवाई की फीस के एक सेट का होगा।

मि०

अपीलें खारिज की गईं।